१८

जीवन की अर्थवत्ता : अहिंसा में

जैन-संस्कृति की मानव-संसार को जो सबसे बड़ी देन है, वह अहिंसा है। अहिंसा का यह महान् विचार, जो आज विश्व की शान्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन समझा जाने लगा है, और जिसकी अमोघ शक्ति के सम्मुख संसार की समस्त संहारक शक्तियाँ कुण्ठित होती दिखाई देने लगी हैं; जैन-संस्कृति का प्राण है। जैन-धर्म का मूल आधार है।

दुःख का उद्भावक : मनुष्य :

जैन-संस्कृति का महान् संदेश है कि कोई भी मनुष्य समाज से सर्वथा पृथक रह कर अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकता। समाज में घुल-मिल कर ही वह अपने जीवन का आनन्द उठा सकता है और आस-पास के संगी-साथियों को भी उठने दे सकता है। जब यह निश्चित है कि व्यक्ति समाज से अलग नहीं रह सकता; तब यह भी आवश्यक है कि वह अपने हृदय को उदार बनाए, विशाल बनाए, विराट बनाएँ और जिन लोगों से खुद को काम लेना है, या जिनको देना है, उनके हृदय में अपनी ओर से पूर्ण विश्वास पैदा करे। जबतक मनुष्य अपने पार्श्ववर्ती समाज में अपनेपन का भाव पैदा न करेगा, अर्थात् जब तक दूसरे लोग उसको अपना न समझेंगे और वह भी दूसरों को अपना न समझेगा, तब तक समाज का कल्याण नहीं हो सकता। मनुष्य-मनुष्य में एक-दूसरे के प्रति अविश्वास ही अशान्ति और विनाश का कारण बना हुआ है।

संसार में जो चारों ओर दुःख का हाहाकार है, वह प्रकृति की ओर से मिलने वाला तो बहुत ही साधारण है। यदि अन्तर्निरीक्षण किया जाए, तो प्रकृति, दुःख की अपेक्षा हमारे सुख में ही अधिक सहायक है। वास्तव में जो कुछ भी ऊपर का दुःख है, वह मनुष्य पर मनुष्य के द्वारा ही लादा हुआ है। यदि हर एक व्यक्ति अपनी ओर से दूसरों पर किए जाने वाले दुःख के कारणों को हटा ले, तो यह संसार आज ही नरक से स्वर्ग में बदल सकता है।

सुख का साधन 'स्व' की सीमा :

जैन-संस्कृति के महान् संस्कारक अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर ने तो राष्ट्रों में परस्पर होने वाले युद्धों का हल भी अहिंसा के द्वारा ही बतलाया। उनका उपदेश है कि मनुष्य 'स्व' की सीमा में ही सन्तुष्ट रहे, 'पर' की सीमा में प्रविष्ट होने का कभी भी प्रयत्न न करे। 'पर' की सीमा में प्रविष्ट होने का अर्थ है, दूसरों के सुख-साधनों को देखकर लालायित होना और उन्हें छीनने का दुःसाहस करना।

जब तक नदी अपनी धारा में प्रवाहित होती रहती है, तब तक उससे संसार को अनेक प्रकार के लाभ मिलते रहते हैं। हानि कुछ भी नहीं। ज्यों ही वह अपनी सीमा से हटकर आस-पास के प्रदेश पर अधिकार जमा लेती है, बाढ़ का रूप धारण कर लेती है, तो संसार में हाहाकार मच जाता है, प्रलय का दृश्य खड़ा हो जाता है। यही दशा मनुष्यों की है। जब तक सब के सब मनुष्य अपने-अपने 'स्व' में ही प्रवाहित रहते हैं, तब तक कुछ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अशान्ति नहीं है। अशान्ति और विग्रह का वातावरण वहीं पैदा होता है, जहाँ कि मनुष्य 'स्व' से बाहर फैलना शुरू करता है, दूसरों के अधिकारों को कुचलता है और दूसरों के जीवनोपयोगी साधनों पर कब्जा जमाने लगता है।

प्राचीन जैन-साहित्य उठाकर आप देख सकते हैं कि भगवान् महावीर ने इस दिशा में कितने बड़े स्तुत्य प्रयत्न किए हैं। वे अपने प्रत्येक गृहस्थ शिष्य को पाँचवें अपरिग्रहव्रत की मर्यादा में सर्वदा 'स्व' में ही सीमित रहने की शिक्षा देते हैं। व्यापार तथा उद्योग आदि क्षेत्रों में उन्होंने अपने अनुयायियों को अपने न्याय प्राप्त अधिकारों से कभी भी आगे नहीं बढ़ने दिया। प्राप्त अधिकारों से आगे बढ़ने का अर्थ है, अपने दूसरे साथियों के साथ संघर्ष में उतरना।

जैन-संस्कृति का अमर आदर्श है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी उचित आवश्यकता की पूर्ति के लिए, अपनी मर्यादा में रहते हुए, उचित साधनों का ही प्रयोग करे। आवश्यकता से अधिक किसी भी सुख-सामग्री का संग्रह कर रखना, जैन-संस्कृति में चोरी माना जाता है। व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र क्यों लड़ते हैं? इसी अनुचित संग्रह-वृत्ति के कारण। दूसरों के जीवन की, जीवन के सुख-साधनों की उपेक्षा करके, मनुष्य कभी भी सुख-शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता। अहिंसा के बीज अपरिग्रह-वृत्ति में ही ढूंढ़े जा सकते हैं। एक अपेक्षा से कहें तो अहिंसा और अपरिग्रह-वृत्ति दोनों पर्यायवाची शब्द हैं।

युद्ध और अहिंसा :

आत्मरक्षा के लिए उचित प्रतिकार के साधन जुटाना, जैन-धर्म के विरुद्ध नहीं है। परन्तु आवश्यकता से अधिक संगृहीत एवं संगठित शक्ति अवश्य ही संहार-लीला का अभिनय करेगी, अहिंसा को मरणोन्मुखी बनाएगी। अतएव आप आश्चर्य न करें कि पिछले कुछ वर्षों से जो शस्त्र-संन्यास का आन्दोलन चल रहा है, प्रत्येक राष्ट्र को सीमित युद्ध सामग्री रखने को कहा जा रहा है, वह जैन तीर्थंकरों ने हजारों वर्ष पहले चलाया था। आज जो काम कानून तथा संविधान के द्वारा लिया जा रहा है, उन दिनों वह उपदेश द्वारा लिया जाता था। भगवान् महावीर ने बड़े-बड़े राजाओं को जैन-धर्म में दीक्षित किया था और उन्हें नियम कराया गया था कि वे राष्ट्ररक्षा के काम में आने वाले आवश्यक शस्त्रों से अधिक शस्त्र-संग्रह न करें। साधनों का आधिक्य मनुष्य को उद्दण्ड और बेलगाम बना देता है। प्रभुता की लालसा में आकर वह कभी-न-कभी किसी पर चढ़ दौड़ेगा और मानव-संसार में युद्ध की आग भड़का देगा। इस दृष्टि से जैन तीर्थंकर हिंसा के मूल कारणों को उखाड़ने का प्रयत्न करते रहे हैं।

जैन तीर्थंकरों ने कभी भी युद्धों का समर्थन नहीं किया। जहाँ अनेक धर्माचार्य साम्राज्यवादी राजाओं के हाथों की कठपुतली बनकर युद्ध का उन्मुक्त समर्थन करते आये हैं, युद्ध में मरने वालों को स्वर्ग का लालच दिखाते आये हैं, राजा को परमेश्वर का अंश बताकर उसके लिए सब कुछ अर्पण कर देने का प्रचार करते आये हैं, वहाँ जैन तीर्थंकर इस सम्बन्ध में बहुत ही स्पष्ट और दृढ़ रहे हैं। 'प्रश्न व्याकरण' और 'भगवती सूत्र' युद्ध के विरोध में क्या कुछ कहते हैं? यदि थोड़ा-सा कष्ट उठाकर देखने का प्रयत्न करेंगे, तो वहाँ बहुत-कुछ युद्ध-विरोधी विचार-सामग्री प्राप्त कर सकेंगे। मगधाधिपति अजातशत्रु कूणिक भगवान् महावीर का कितना उत्कृष्ट भक्त था? 'औपपातिक सूत्र' में उसकी भक्ति का चित्र चरम सीमा पर पहुँचा हुआ है। प्रतिदिन भगवान् के कुशल-समाचार जान कर फिर अन्न-जल ग्रहण करना, कितना उग्र नियम है! परन्तु वैशाली पर कूणिक द्वारा होने वाले आक्रमण का भगवान् ने जरा भी समर्थन नहीं किया। प्रत्युत कूणिक के प्रश्न पर उसे अगले जन्म में नरक का अधिकारी बताकर उसके क्रूर-कर्मों को स्पष्ट ही धिक्कारा है। अजातशत्रु इस पर रुष्ट भी हो जाता है, किन्तु भगवान् महावीर इस बात की कुछ भी परवाह नहीं करते। भला, अहिंसा के अवतार उसके रोमांचकारी नर-संहार का समर्थन कैसे कर सकते थे?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा निष्क्रिय नहीं है :

जैन तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट अहिंसा निष्क्रिय अहिंसा नहीं है। वह विधेयात्मक है। जीवन के भावात्मक रूप—प्रेम, परोपकार एवं विश्व-बन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत है। जैन-धर्म की अहिंसा का क्षेत्र बहुत ही व्यापक एवं विस्तृत है। उसका आदर्श, स्वयं आनन्द से जीओ और दूसरों को जीने-दो, यहीं तक सीमित नहीं है। उसका आदर्श है—दूसरों के जीने में सहयोगी बनो। और अवसर आने पर दूसरों के जीवन की रक्षा के लिए अपने जीवन की आहुति भी दे डालो। वे उस जीवन को कोई महत्त्व नहीं देते, जो जन-सेवा के मार्ग से सर्वथा दूर रहकर एकमात्र भक्ति-वाद के अर्थ-शून्य क्रियाकाण्डों में ही उलझा रहता है।

भगवान् महावीर ने एक बार अपने प्रमुख शिष्य गणधर गौतम को यहाँ तक कहा था कि मेरी सेवा करने की अपेक्षा दीन-दुःखियों की सेवा करना कहीं अधिक श्रेयस्कर है। मेरे भक्त वे नहीं, जो मेरी भक्ति करते हैं, माला फेरते हैं। किन्तु मेरे सच्चे भक्त वे हैं, जो मेरी आज्ञा का पालन करते हैं। मेरी आज्ञा है—**"प्राणिमात्र की आत्मा को सुख, सन्तोष और आनन्द पहुँचाओ।"**

भगवान् महावीर का यह महान् ज्योतिर्मय सन्देश आज भी हमारी आँखों के सामने है, इसका सूक्ष्म बीज 'उत्तराध्यन-सूत्र' की सर्वार्थ-सिद्धि-वृत्ति में आज भी हम देख सकते हैं।

वर्तमान परिस्थिति और अहिंसा :

अहिंसा के महान् सन्देशवाहक भगवान् महावीर थे। आज से ढ़ाई हजार वर्ष पहले का समय, भारतीय संस्कृति के इतिहास में, एक प्रगाढ़ अन्धकारपूर्ण युग माना जाता है। देवी-देवताओं के आगे पशु-बलि के नाम पर रक्त की नदियाँ बहाई जाती थीं, माँसाहार और सुरापान का दौर चलता था। अस्पृश्यता के नाम पर करोड़ों की संख्या में मनुष्य अत्याचार की चक्की में पिस रहे थे। स्त्रियों को भी मनुष्योचित अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। एक क्या, अनेक रूपों में हिंसा की प्रचण्ड ज्वालाएँ धधक रही थीं, समूची मानव जाति उससे संत्रस्त हो रही थी। उस समय भगवान् महावीर ने संसार को अहिंसा का अमृत सन्देश दिया। हिंसा का विषाक्त प्रभाव धीरे-धीरे शान्त हुआ और मनुष्य के हृदय में मनुष्य क्या, पशुओं के प्रति भी दया, प्रेम और करुणा की अमृत-गंगा बह उठी। संसार में स्नेह, सद्भाव और मानवोचित अधिकारों का विस्तार हुआ। संसार की मातृ-जाति नारी को फिर से योग्य सम्मान मिला। शूद्रों को भी मानवीय ढंग से जीने का अधिकार प्राप्त हुआ। और मूक पशुओं ने भी मनुष्य के क्रूर-हाथों से अभय-दान पाकर जीवन का अमोघ वरदान पा लिया।

अहिंसा एवं विभिन्न मत :

अहिंसा की परिधि के अन्तर्गत समस्त धर्म और समस्त दर्शन समवेत हो जाते हैं, यही कारण है कि प्रायः सभी धर्मों ने इसे एक स्वर से स्वीकार किया है। हमारे यहाँ के चिन्तन में, समस्त धर्म-सम्प्रदायों में अहिंसा के सम्बन्ध में, उसकी महत्ता और उपयोगिता के सम्बन्ध में दो मत नहीं हैं, भले ही उसकी सीमाएँ कुछ भिन्न-भिन्न हों। कोई भी धर्म यह कहने के लिए तैयार नहीं कि हत्या करने में धर्म है। झूठ बोलने में धर्म है, चोरी करने में धर्म है, या अब्रह्मचर्य—व्यभिचार सेवन करने में धर्म है। जब इन्हें धर्म नहीं कहा जा सकता, तो हिंसा को कैसे धर्म कहा जा सकता है? हिंसा को हिंसा के नाम से कोई स्वीकार नहीं करता। अतः किसी भी धर्मशास्त्र में हिंसा को धर्म और अहिंसा को अधर्म नहीं कहा गया है। सभी धर्मों ने अहिंसा को ही परम धर्म स्वीकार किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन-धर्म में अहिंसा भावना :

आज से पच्चीस-सौ वर्ष पूर्व भगवान् महावीर ने अहिंसा की नींव को सुदृढ़ बनाने के लिए, हिंसा के विरोध में प्रतिक्रांति की। अहिंसा और धर्म के नाम पर हिंसा का जो नग्न नृत्य हो रहा था, जनमानस भ्रान्त किया जा रहा था, वह भगवान् महावीर से देखा नहीं गया। उन्होंने हिंसा पर लगे धर्म के मुखौटों को उतार फेंका, और सामान्य जनमानस को उद्‌बुद्ध करते हुए कहा—'हिंसा कभी भी धर्म नहीं हो सकती। विश्व के सभी प्राणी, वे चाहे छोटे हों या बड़े, पशु हों या मानव सभी जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता।[1] सबको सुख प्रिय है, दुःख अप्रिय है। सबको अपना जीवन प्यारा है।[2] जिस हिंसक व्यापार को तुम अपने लिए पसन्द नहीं करते, उसे दूसरा भी पसन्द नहीं करता। जिस दयामय व्यवहार को तुम पसन्द करते हो, उसे सभी पसन्द करते हैं। यही जिन-शासन के उपदेशों का सार है, जो कि एक तरह से सभी धर्मों का सार है।[3] किसी के प्राणों की हत्या करना, धर्म नहीं हो सकता। अहिंसा, संयम और तप यही वास्तविक धर्म है।[4] इस लोक में जितने भी त्रस और स्थावर प्राणी हैं, उनकी हिंसा न जान में करो, न अनजान में करो और न दूसरों से ही किसी की हिंसा कराओ।[5] क्योंकि सब के भीतर एक-सी आत्मा है, हमारी तरह सबको अपने प्राण प्यारे हैं, ऐसा मानकर भय और वैर से मुक्त होकर किसी भी प्राणी की हिंसा न करो। जो व्यक्ति खुद हिंसा करता है, दूसरों से हिंसा करवाता है और दूसरों की हिंसा का अनुमोदन करता है, वह अपने लिए वैर ही बढ़ाता है।[6] अतः अन्य सब प्राणियों के प्रति वैसा ही भाव रखो, जैसा कि अपनी आत्मा के प्रति रखते हो।[7] सभी जीवों के प्रति अहिंसक होकर रहना चाहिए। सच्चा संयमी वही है, जो मन, वचन और शरीर से किसी की हिंसा नहीं करता। यह है—भगवान् महावीर की आत्मौपम्य दृष्टि, जो अहिंसा में ओत-प्रोत होकर विराट् विश्व के सम्मुख आत्मानुभूति का एक महान् गौरव प्रस्तुत कर रही है।

जैन-दर्शन में अहिंसा के दो पक्ष हैं। 'नहीं मारना'—यह अहिंसा का एक पहलू है, उसका दूसरा पहलू है—'मैत्री, करुणा और सेवा।' यदि हम सिर्फ अहिंसा के नकारात्मक पहलू पर ही सोचें, तो यह अहिंसा की अधूरी समझ होगी। सम्पूर्ण अहिंसा की साधना के लिए प्राणिमात्र के साथ मैत्री सम्बन्ध रखना, उसकी सेवा करना, उसे कष्ट से मुक्त करना आदि विधेयात्मक पक्ष पर भी समुचित विचार करना होगा। जैन आगमों में जहाँ अहिंसा

---

१. सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं।
—दशवैकालिक सूत्र, ६।११

२. सव्वे पाणा पिआउया सुहसाया दुहपडिकूला।
—आचारांग सूत्र १।२।३

३. जं इच्छसि अप्पणतो, जं च न इच्छसि अप्पणतो।
तं इच्छ परस्स वि, एत्तियमितं जिणसासणयं॥
—बृहत्कल्प भाष्य, ४५८४

४. धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
—दशवैकालिक, १।१

५. जावन्ति लोए पाणा तसा अदुव थावरा।
ते जाणमजाणं वा न हणे नो वि घायए॥
—दशवैकालिक

६. सयंउतिवायए पाणे, अदुवाऽन्नेहिं घायए।
हणन्तं वाऽणुजाणाइ वेरं वड्ढई अप्पणो॥
—सूत्र कृताङ्ग, १।१।१।३

७. अज्झत्थं सव्वओ सव्वं दिस्स पाणे पियाउए।
न हणे पाणिणो पाणे भयवेराओ उवरए॥
—उत्तराध्ययन, ८।१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के साठ एकार्थक नाम दिए गए हैं, वहाँ वह दया, रक्षा, अभय आदि के नाम से भी अभिहित की गई है।[1]

अनुकम्पा दान, अभयदान तथा सेवा आदि अहिंसा के ही रूप हैं जो प्रवृत्ति-प्रधान हैं। यदि अहिंसा केवल निवृत्तिपरक ही होती, तो जैन आचार्य इस प्रकार का कथन कथमपि नहीं करते। 'अहिंसा' शब्द भाषाशास्त्र की दृष्टि से निषेध-वाचक है। इसी कारण बहुत से व्यक्ति इस भ्रम में फँस जाते हैं कि अहिंसा केवल निवृत्तिपरक है। उसमें प्रवृत्ति जैसी कोई चीज नहीं। किन्तु गहन चिन्तन करने के पश्चात यह तथ्य स्पष्ट हुए बिना नहीं रहेगा कि अहिंसा के अनेक पहलू हैं, उसके अनेक अंग हैं। अतः प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों में अहिंसा समाहित है, प्रवृत्ति-निवृत्ति—दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। एक कार्य में जहाँ प्रवृत्ति हो रही है, वहाँ दूसरे कार्य से निवृत्ति भी होती है। ये दोनों पहलू अहिंसा के साथ भी जुड़े हैं। जो केवल निवृत्ति को ही प्रधान मानकर चलता है, वह अहिंसा की आत्मा को परख ही नहीं सकता। वह अहिंसा की सम्पूर्ण साधना नहीं कर सकता। जैन श्रमण के उत्तर गुणों में समिति और गुप्ति का विधान है। समिति की मर्यादाएँ प्रवृत्ति-परक हैं और गुप्ति की मर्यादाएँ निवृत्ति-परक हैं। इससे भी स्पष्ट है कि अहिंसा प्रवृत्तिमूलक भी है। प्रवृत्ति-निवृत्ति—दोनों अहिंसारूप सिक्के के दो पहलू हैं। एक-दूसरे के अभाव में अहिंसा अपूर्ण है। यदि अहिंसा के इन दोनों पहलुओं को न समझ सके, तो अहिंसा की वास्तविकता से हम बहुत दूर भटक जाएँगे। असद्-आचरण से निवृत्त बनो और सद्-आचरण में प्रवृत्ति करो, यही निवृत्ति-प्रवृत्ति का सुन्दर एवं पूर्ण विवेचन है।

अहिंसक प्रवृत्ति के बिना समाज का काम नहीं चल सकता, चूंकि प्रवृत्ति-शून्य अहिंसा समाज में जड़ता पैदा कर देती है। मानव एक शुद्ध सामाजिक प्राणी है, वह समाज में जन्म लेता है और समाज में रहकर ही अपना सांस्कृतिक विकास एवं अभ्युदय करता है; उस उपकार के बदले में वह समाज को कुछ देता भी है। यदि कोई इस कर्तव्य की राह से विलग हो जाता है, तो वह एक प्रकार से उसकी असामाजिकता ही होगी। अतः प्रवृत्ति-रूप धर्म के द्वारा समाज की सेवा करना—मानव का प्रथम कर्तव्य है, और इस कर्तव्य की पूर्ति में ही मानव का अपना तथा समाज का कल्याण निहित है।

बौद्ध-धर्म में अहिंसा-भावना :

'आर्य' की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए तथागत बुद्ध ने कहा है—"प्राणियों की हिंसा करने से कोई आर्य नहीं कहलाता, बल्कि जो प्राणी की हिंसा नहीं करता, उसी को आर्य कहा जाता है।[2] सब लोग दण्ड से डरते हैं, मृत्यु से भय खाते हैं। मानव दूसरों को अपनी तरह जानकर न तो किसी को मारे और न किसी को मारने की प्रेरणा करे।[3] जो न स्वयं किसी का घात करता है, न दूसरों से करवाता है, न स्वयं किसी को जीतता है, न किसी अन्य से जीतवाता है। वह सर्वप्राणियों का मित्र होता है, उसका किसी के साथ वैर नहीं होता।[4] जैसा मैं हूँ, वैसे ही ये हैं, तथा जैसे ये हैं, वैसा ही मैं हूँ; इस प्रकार आत्मसदृश मानकर

---

१. प्रश्न व्याकरण सूत्र (संवर द्वार)
(क) दया देहि-रक्षा —प्रश्नव्याकरण वृत्ति

२. न तेन अरियो होति, येन पाणानि हिंसति।
अहिंसा सब्बपाणानं, अरियो ति पवुच्चति॥
—धम्मपद १९।१५

३. सब्बे तसन्ति दण्डस्स, सब्बेसं जीवितं पियं।
अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये॥—धम्मपद १०।१

४. यो न हन्ति न घातेति, न जिनाति न जापये।
मित्तं सो सब्बभूतेसु, वेरं तस्स न केनची॥—इतिवुत्तक, पृ० २०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न किसी का घात करे, न कराए।[1] सभी प्राणी सुख के चाहने वाले हैं, इनका जो दण्ड से घात नहीं करता है, वह सुख का अभिलाषी मानव अगल जन्म में सुख को प्राप्त करता है।[2] इस प्रकार तथागत बुद्ध ने भी हिंसा का निषेध करके अहिंसा की प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न किया है।

तथागत बुद्ध का जीवन 'महाकारुणिक जीवन' कहलाता है। दीन-दुःखियों के प्रति उनके मन में अत्यन्त करुणा भरी थी। सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में भी उन्होंने तीर्थंकर महावीर की भाँति अनेक प्रसंगों पर अहिंसात्मक प्रतिकार के उदाहरण रखे। उनकी अहिंसात्मक और शान्तिप्रिय वाणी से अनेक बार घात-प्रतिघात में, शौर्य प्रदर्शन में युद्ध-रत क्षत्रियों का खून बहता-बहता रुका है।

भगवान् महावीर की भाँति तथागत बुद्ध भी श्रमण-संस्कृति के एक महान् प्रतिनिधि थे। उन्होंने भी सामाजिक व राजनीतिक कारणों से होने वाली हिंसा की आग को प्रेम और शान्ति के जल से शान्त करने के सफल प्रयोग किए, और इस आस्था को सुदृढ़ बनाया कि समस्या का प्रतीकार सिर्फ तलवार ही नहीं, प्रेम और सद्भाव भी है। यही अहिंसा का मार्ग वस्तुतः शान्ति और समृद्धि का मार्ग है।

वैदिक-धर्म में अहिंसा-भावना :

वदिक धर्म में भी अहिंसा की प्रधानता है। **"अहिंसा परमो धर्मः"** के अटल सिद्धान्त को सम्मुख रखकर उसने भी अहिंसा की विवचना की है। अहिंसा ही सब से उत्तम पावन धर्म है, अतः मनुष्य को कभी भी, कहीं भी किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए।[3] जो कार्य तुम्हें पसन्द नहीं है, उसे दूसरों के लिए कभी न करो।[4] इस नश्वर जीवन में न तो किसी प्राणी की हिंसा करो और न किसी को पीड़ा पहुँचाओ, बल्कि सभी आत्माओं के प्रति मैत्री-भावना स्थापित कर विचरण करते रहो। किसी के साथ वैर न करो।[5] जैसे मानव को अपने प्राण प्यारे हैं, उसी प्रकार सभी प्राणियों को अपने-अपने प्राण प्यारे हैं। इसलिए बुद्धिमान और पुण्यशाली जो लोग हैं, उन्हें चाहिए कि वे सभी प्राणियों को अपने समान समझें।[6]

इस विश्व में अपने प्राणों से प्यारी दूसरी कोई वस्तु प्रिय नहीं हैं। इसलिए मानव जैसे अपने ऊपर दया-भाव चाहता है, उसी प्रकार दूसरों पर भी दया करे।[7] दयालु आत्मा[8]

---

१. यथा अहं तथा एते, यथा एते तथा अहं।
अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये ।।—सुत्तनिपात, ३।३।७।२७

२. सुखकामानि भूतानि, यो दण्डेन न विहिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो, पेच्च सो लभते सुखं ।।—उदान, पृ० १२

३. अहिंसा परमो धर्मः, सर्वप्राणभृतां वरः।
तस्मात् प्राणभृतः सर्वान् न हिंस्यान्मानुषः क्वचित् ।।—महाभारत, आदि पर्व ११।१३

४. आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।—मनुस्मृति

५. न हिंस्यात् सर्वभूतानि, मैत्रायणगतश्चरेत्।
नेदं जीवितमासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित् ।।—महाभारत, शान्ति पर्व, २७८।५

६. प्राणा यथात्मनोऽभीष्टाः भूतानामपि वै तथा।
आत्मौपम्येन गन्तव्यं बुद्धिमद्भिर्महात्मभिः ।।
—महाभारत—अनुशासन पर्व; ११५।१९

७. नहि प्राणात् प्रियतर लोके किञ्चन विद्यते।
तस्माद् दयां नरः कुर्यात् यथात्मनि तथा परे ।।—महाभारत, अनुशासन पर्व, ११६।८

८. अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति दयापरः।
अभयं तस्य भूतानि ददतीत्यनुशुश्रुमः ।।—महाभारत, अनुशासन पर्व, ११६।१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही सभी प्राणियों को अभयदान देता है, उसे भी सभी अभयदान देते हैं। अहिंसा ही एकमात्र पूर्ण धर्म है। हिंसा, धर्म और तप का नाश करने वाली है।[1] अतः यह स्पष्ट है कि वैदिक-धर्म भी अहिंसा की महत्ता को एक स्वर से स्वीकार करता है। इन वचनों पर से स्पष्ट है कि वैदिक-परम्परा में यज्ञ आदि में हिंसा का, जो प्रचलन हुआ, वह बहुत बाद में मानव की स्वार्थ-परक मनोवृत्ति के कारण ही हुआ। मूलतः ऐसा नहीं था।

इस्लाम धर्म में अहिंसा भावना :

इस्लाम-धर्म की अट्टालिका भी मूलतः अहिंसा की नींव पर ही टिकी हुई है। इस्लाम-धर्म में कहा जाता है—"खुदा सारे जगत (खल्क) का पिता (खालिक) है। जगत में जितने प्राणी हैं, वे सभी खुदा के पुत्र (बन्दे) हैं।" कुरान शरीफ की शुरूआत में ही अल्लाहताला 'खुदा' का विशेषण दिया है—**"बिस्मिल्लाह रहिमानुर्रहीम"**—इस प्रकार का मंगलाचरण देकर यह बताया गया है कि सब जीवों पर रहम करो।

मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी हजरत अली साहब ने कहा है—"हे मानव! तू पशु-पक्षियों की कब्र अपने पेट में मत बना" अर्थात पशु-पक्षियों को मार कर उनको अपना भोजन मत बना। इसी प्रकार 'दीनइलाही' के प्रवर्त्तक मुगल सम्राट अकबर ने कहा है—"मैं अपने पेट को दूसरे जीवों का कब्रिस्तान बनाना नहीं चाहता। जिसने किसी की जान बचाई—उसने मानों सारे इन्सानों को जिन्दगी बख्शी।[2]

उपर्युक्त उदाहरणों से यही प्रतिभासित होता है कि इस्लाम-धर्म भी अपने साथ अहिंसा की दृष्टि को लेकर चला है। बाद में उसमें जो हिंसा का स्वर गूंजने लगा, उसका प्रमुख कारण स्वार्थी व रसलोलुप व्यक्ति ही हैं। उन्होंने हिंसा का समावेश करके इस्लाम-धर्म को बदनाम कर दिया है, वरना उसके धर्मग्रन्थों में हिंसा का कोई महत्त्व नहीं है।

ईसाई धर्म में अहिंसा भावना :

महात्मा ईसा ने कहा है कि—"तू अपनी तलवार म्यान में रख ले, क्योंकि जो लोग तलवार चलाते हैं, वे सब तलवार से ही नाश किए जाएँगे"[3] अन्यत्र भी बतलाया है—"किसी भी जीव की हिंसा मत करो। तुमसे कभी कहा गया था कि तुम अपने पड़ोसी से प्रम करो और अपने दुश्मन से घृणा। पर मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम अपने दुश्मन को भी प्यार करो और जो लोग तुम्हें सताते हैं, उनके लिए प्रार्थना करो। तभी तुम स्वर्ग में रहने वाले अपने पिता की संतान ठहरोगे क्योंकि वह भले और बुरे—दोनों पर अपना सूर्य उदय करता है। धर्मियों और अधर्मियों—दोनों पर मेह बरसाता है। यदि तुम उन्हीं से प्रेम करो, जो तुम से प्रेम करते हैं, तो तुमने कौन मार्के की बात की?"[4] इतना ही नहीं, वरन अहिंसा का वह पैगाम तो काफी गहरी उड़ान भर बैठा है—"अपने शत्रु से प्रेम रखो। जो तुम से वैर करें, उनका भी भला सोचो और करो। जो तुम्हें शाप दें, उन्हें भी आशीर्वाद दो। जो तुम्हारा अपमान करे, उसके लिए भी प्रार्थना करो। जो तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे, उसकी तरफ दूसरा भी गाल कर दो। जो तुम्हारी चादर छीन ले, उसे अपना कुरता भी दे दो।"[5]

ईसाई धर्म में भी प्रेम, करुणा और सेवा की अत्यन्त सुन्दर भावना व्यक्त की गई हैं। यह बात दूसरी है कि स्वार्थी और अहंवादी व्यक्तियों ने धर्म के नाम पर लाखों-करोड़ों

१. अहिंसा सकलो धर्मः।—महाभारत, शान्ति पर्व
२. व मन् अहया हा फ़कअन्नमा अह्यान्नास जमीअनः।—कुरान शरीफ ५।३५
३. मत्ती।—२।५१-५२
४. मत्ती।—५।४५-४६
५. लूका, ६।२७-३७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहूदियों का खून बहाया, धर्मयुद्ध रचाए और करुणा की जगह तलवार तथा प्रेम की जगह घृणा का प्रचार करने लगे।

यहूदी धर्म में अहिंसा भावना :

यहूदी मत में कहा गया है कि—"किसी आदमी के आत्म-सम्मान को चोट नहीं पहुँचानी चाहिए। लोगों के सामने किसी आदमी को अपमानित करना, उतना ही बड़ा पाप है, जितना उसका खून कर देना।"[1]

"यदि तुम्हारा शत्रु तुम्हें मारने को आए और वह भूखा-प्यासा तुम्हारे घर पहुँचे, तो उसे खाना दो, पानी दो।"[2]

"यदि कोई आदमी संकट में है, डूब रहा है, उस पर दस्यु—डाकू या हिंसक शेर-चीते आदि हमला कर रहे हैं, तो हमारा कर्तव्य है कि हम उसकी रक्षा करें। प्राणिमात्र के प्रति निर्वैरभाव रखने की प्रेरणा प्रदान करते हुए यह बतलाया गया है कि—अपने मन में किसी के प्रति वैर का, दुश्मनी का दुर्भाव मत रखो।"[3]

इस प्रकार यहूदी-धर्म के प्रवर्त्तकों की दृष्टि भी अहिंसा पर ही आधारित प्रतीत होती है।

पारसी और ताओ धर्म में अहिंसा भावना :

पारसी-धर्म के महान् प्रवर्त्तक महात्मा जरथ्रुस्त ने कहा है कि—"जो सबसे अच्छे प्रकार की जिन्दगी गुजारने से लोगों को रोकते हैं, अटकाते हैं और पशुओं को मारने की खुश-खुशाल सिफारिश करते हैं, उनको अहुरमज्द बुरा समझते हैं।[4] अतः अपने मन में किसी से बदला लेने की भावना मत रखो। सोचो कि तुम अपने दुश्मन से बदला लोगे तो तुम्हें किस प्रकार की हानि, किस प्रकार की चोट और किस प्रकार का सर्वनाश भुगतना पड़ सकता है, और किस प्रकार बदले की भावना तुम्हें लगातार सताती रहेगी? अतः दुश्मन से भी बदला मत लो। बदले की भावना से अभिप्रेरित होकर कभी कोई पापकर्म मत करो। मन में सदा-सर्वदा सुन्दर विचारों के दीपक सँजोए रखो।"

ताओ-धर्म के महान प्रणेता—'लाओत्से' ने अहिंसात्मक विचारों को अभिव्यक्त करते हुए कहा है कि—"जो लोग मेरे प्रति अच्छा व्यवहार करते हैं, उनके प्रति मैं अच्छा व्यवहार करता हूँ। जो लोग मेरे प्रति अच्छा व्यवहार नहीं भी करते, उनके प्रति भी मैं अच्छा व्यवहार करता हूँ।"[5]

कनफ्यूशस-धर्म के प्रवर्त्तक कांगफ्यूत्सी ने कहा है कि—"तुम्हें जो चीज नापसन्द है, वह दूसरे के लिए हर्गिज मत करो।"

इस प्रकार विविध धर्मों में अहिंसा को उच्च स्थान दिया गया है। वस्तुतः अहिंसा और दया की भावना से शून्य होकर कोई भी धर्म, धर्म की संज्ञा पाने का अधिकारी नहीं हो सकता।

●

---

१. ता० बाबा मेतलिया—५८(ब)।
२. नीति, २५।२१ परमिदारास
३. तोरा—लव्य व्यवस्था १६।१७
४. गाथा।—हा० ३४, ३
५. लाओ तेह किंग।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org